

भारतीय नीतिशास्त्र

भारतीय विचारक बहुत प्राचीन काल से ही मनुष्य के आचरण और चरित्र से सम्बन्धित मूल प्रश्नों पर चिन्तन करते रहे हैं।

वेदों और उपनिषदों को भारतीय धर्म, दर्शन और नीतिशास्त्र का मूल उद्गम माना है। कर्मवाद, पुनर्जन्म, आत्मा की अमरता आदि नैतिक सिद्धान्तों का उदय वैदिक युग में ही हो चुका था। वैदिक युग में लोग अपने जीवन को अधिकाधिक सुख और समृद्ध बनाने का प्रयत्न करते थे। इसी कारण वैदिक-कालीन समाज में भौतिक ऐश्वर्य और सांसारिक सुख-समृद्धि को महत्व देने वाले प्रवृत्ति मार्ग को प्रधानता दी जाती थी। उपनिषद्कार आत्मत्याग या वैराग्य को ही आध्यात्मिक उन्नति का साधन मानते थे, इसे ही 'निवृत्ति-मार्ग' कहा जाता है।

भारतीय नीतिशास्त्र में नीतिशास्त्र को परिभाषित करते हुए, नीतिमंजरी में कहा है— कर्तव्य और अकर्तव्य का बोध कराने वाला शास्त्र नीतिशास्त्र है। उपनिषदों में नीतिशास्त्र को श्रेय (शुभ) को प्राप्त करने का साधन बताया गया है। मनुस्मृति में नीतिशास्त्र को सदाचार का विवेचन करने वाला शास्त्र बताया गया है। चाणक्य के अनुसार नीतिशास्त्र मानव चरित्र के मूल्यांकन की एक विधि है। शुक्राचार्य लिखते हैं कि जो शास्त्र नयन व्यापार करे अर्थात् व्यक्ति और समाज को कुमार्ग से सुमार्ग की ओर ले जाय। अतः भारतीय नीतिशास्त्र में प्रवृत्ति और निवृत्ति भोग और योग, यथार्थ और आदर्श का समन्वय है।

आश्रम व्यवस्था का निहितार्थ

वर्तमान सन्दर्भ में विज्ञान द्वारा उपलब्ध प्रचुर सुखोपभोग के साधनों और जटिल सामाजिक व्यवस्था के देखते हुए कुछ विचारक आश्रम व्यवस्था को वैयक्तिक विकास हेतु निरर्थक मानते हैं परंतु वास्तविकता यह है कि इस व्यवस्था में कुछ स्थायीतत्व ऐसे हैं, जिन्हें आज भी मानव दूसरे रूपों में स्वीकार करता है यथा:-

- (1) आज के सन्दर्भ में ब्रह्मचर्य का अर्थ अपनी शारीरिक, ऐन्द्रिक एवं मानसिक ऊर्जा का संरक्षण करते हुए उसे केवल विद्याध्ययन में अथवा किसी कौशल को सीखने में व्यय करना है। निष्ठा और संयम के बिना सफलता प्राप्त नहीं हो सकती।
- (2) मनुष्य की जैविक या प्राकृत आवश्यकता पूर्ति हेतु ग्रहस्थ आश्रम की व्यवस्था है। भारतीय नीतिज्ञ इन बातों को जानते थे, अतः उन्होंने स्वेच्छाचारिता के स्थान पर विवाह संस्कार को स्थापित किया।
- (3) वानप्रस्थ आश्रम लोकसंग्रह, समाज सेवा, विश्व-सेवा और आत्म-सेवा का प्रस्थान है। वानप्रस्थी निरपृह होकर अध्यात्म पथ पर अग्रसर होता है।
- (4) सन्यास मात्र आत्मा में रमण करना है। वह लोक कल्याण से विमुख नहीं होता और ज्ञात का वितरण करता है। सन्यासी का कर्तव्य आत्म-साक्षात्कार करना था। जीवन के परम सत्य में स्थित होना है और प्रवचन एवं स्वाध्याय करना है।

आधुनिक युग में चाहे जितना विकास हुआ हो, जितने नये मानवीय मूल्यों के प्रति आकर्षण बढ़ा हो, फिर भी आश्रम-व्यवस्था के गुणों को वैयक्तिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं चारित्रिक दृष्टि से अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। सत्य तो यह कि वैयक्तिक विकास और सामाजिक कल्याण की दृष्टि से आश्रम व्यवस्था अपरिहार्य है। यद्यपि इसमें युगानुकूल संशोधन किया जा सकता है तथापि इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता है।

ऋण

वेदों के अनुसार सुख और स्वर्ग प्राप्ति ही मानव का चरम लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति मनुष्य को धर्म, सतकर्म, यज्ञ, कर्तव्य आदि पालन से होती है। इस चरम-लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वेदों में मनुष्य को ऋण त्रय से मुक्त होने पर भी जोर दिया है। ऋण तीन प्रकार के हैं- देवऋण, ऋषि ऋण और पितृ ऋण।

देव ऋण

वेदों में भौतिक समुद्धि के दाता के रूप में देवताओं को माना गया है। देवता मनुष्यों को समपन्नता प्रदान करते हैं और मनुष्य की सुरक्षा करते हैं, अतः देवताओं का मनुष्य के ऊपर ऋण होता है। यज्ञों द्वारा मनुष्य देवताओं को प्रसन्न कर उनके ऋण से मुक्त होता है।

2.1.9 ऋषि ऋण

वैदिक व्यक्ति अपने प्राचीन ऋषियों से सांस्कृतिक विरासत के रूप में ज्ञान ग्रहण करता है। व्यक्ति अपने बाद आने वाली पीढ़ी को गुरु-शिष्य परम्परा में आने वैचारिक ज्ञान सम्पदा को हस्तान्तरित करता है और इस प्रकार वह ऋषि ऋण से उन्मुक्त होने का प्रयास करता है।

2.1.10 पितृ ऋण

व्यक्ति पर बुजुर्गों अथवा पितृगणों का ऋण है। गृहस्थ जीवन में प्रवेश करके संतानोत्पत्ति करना और संतति श्रृंखला की कड़ी को आगे बढ़ाना है। वैदिक व्यक्ति देव-ऋण द्वारा देवताओं के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता है और ऋषि तथा पितृ-ऋण द्वारा समाज के प्रति अपने कर्तव्यों और दायित्वों का निर्वाह करता है।

1.1.11 पुरुषार्थ चतुष्टय

‘पुरुषार्थ’ दो शब्दों के मेल से बना है। ‘पुरुष’ (आत्मा) और ‘अर्थ’ (लक्ष्य)। पुरुषार्थ वह है जो व्यक्ति के जीवन की लक्ष्यपूर्ति के लिए आवश्यक और लाभदायक हो। व्यक्ति के कर्मों के लक्ष्य को ही पुरुषार्थ कहा जाता है। जिनके लिए मनुष्य की चेष्टाएँ होती हैं, वे ही उसके पुरुषार्थ हैं।

भारतीय विचारकों ने मनुष्य के इहलोक और परलोक हेतु चार आदर्श-साध्य या प्रधान लक्ष्य बताए हैं। इन्हीं से प्रेरित होकर मनुष्य के सभी व्यापार होते हैं। ये चार पुरुषार्थ हैं-

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

2.1.12 धर्म

धर्म शब्द ‘धृ’ धातु से बना है। धर्म का अर्थ धारण करने योग्य कर्म से किया गया है। धर्म जीवन का एक अंश नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण जीवन में व्याप्त है। जीवन के सभी क्षेत्रों में कर्तव्यों का समुचित पालन करने वाला व्यक्ति ही सच्चा धार्मिक व्यक्ति है।

ऋग्वेद के अनुसार-

‘सत्यात् नास्ति परो धर्मः’ अर्थात् सत्य से बढ़कर अन्य कोई धर्म नहीं है।

पाश्चात्य दर्शन में धर्म को Religion कहते हैं। Religion और धर्म समानार्थी नहीं हैं। ‘धर्म’ का क्षेत्र ‘Religion’ के क्षेत्र से व्यापक है। Religion का अर्थ उस मार्ग या पद्धति से है जो ईश्वर या सत्य से मिलाये। परन्तु ‘धर्म’ सम्पूर्ण जीवन को संतुष्ट करता है। Religion साधन है जबकि ‘धर्म’ साध्य है। सभी मनुष्यों को अपने धर्म का पालन करना चाहिए। गीता में कहा गया है कि - “स्वधर्मं निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः”। गीता 3.35। मनु ने धर्म के दस लक्षण बताए हैं- धैर्य, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, मानसिक संयम, अंतर्बाह्य शुद्धि, अस्तेय, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध का भाव। डॉ. राधाकृष्णन के शब्दों में “चारों वर्णों और चारों अवस्थाओं तथा चारों पुरुषार्थों से सम्बन्ध मनुष्य के निःशेष कर्तव्यसमुदाय को धर्म कहा जाता है।”

2.1.13 अर्थ

अर्थ मनुष्य जीवन की समस्त भौतिक सुख-सुविधा का आधार है। भूतृहरि धन को ही सभी गुणों की खान मानते हैं। धन को व्यक्ति और समाज के भौतिक विकास के लिए आवश्यक माना गया है। बिना धन के व्यक्ति की आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो सकती। चाणक्य का कथन है कि “वाणी का लगा हुआ घाव अर्थ से दूर हो जाता है इस प्रकार, अर्थ का जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। तथापि धन मानव के लिए एक साधन है इसे जब भी साध्य माना गया है तब तब मानवीय मूल्यों का ह्रास हुआ है।”

2.1.14 काम

‘काम’ को दो अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है— सामान्य अर्थ और विशेष अर्थ सामान्य अर्थ में विषयानुभवजन्य सुख ‘काम’ है। अर्थात् बाह्य वस्तु जो सुखद प्रतीत हो, उसके अनुभव की इच्छा ‘काम’ है। काम के अन्तर्गत समस्त इन्द्रियजन्य सुख और मानसिक सुख आ जाते हैं। विशेष अर्थ में काम का अर्थ है इन्द्रियजन्य सुख।

हिन्दू दर्शन में काम को वृहद् अर्थ में किया जाता है। यहाँ इन्द्रियों के दमन की बात नहीं की गयी है अपितु इन्द्रिय – नियन्त्रण रखते हुए उन्हें तृप्त करना आवश्यक समझा जाता है। काम को संतुलित बनाये रखने के लिए धर्म का बोध परमावश्यक है। हिन्दू धर्म व्यक्ति की वासनाओं एवं इच्छाओं को नियन्त्रित रूप से तृप्त करने का आदेश देता है। राजा जनक इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। वे संसार में रहते हुए भी सांसारिकता से ऊपर थे। जिस प्रकार कमल जल में रहकर भी उससे अलग रहता है उसी प्रकार कामतृप्ति में हमें अपने विवेक को भूलना नहीं चाहिए।

2.1.15 मोक्ष

चौथा और अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष है। आत्मा को अपनी समस्त स्वाभाविक शक्तियों से सम्पन्न होने की स्थिति है। अज्ञान के कारण आत्मा बंधन में पड़ जाती है इस बंधन से छूटकर आत्मा को अपने स्वरूप का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना मोक्ष है।

मोक्ष का सामान्य अर्थ है— मोक्ष एक ऐसी अवस्था है, जहाँ दुखों का पूर्ण अभाव रहता है। कुछ लोगों ने इस अवस्था को केवल दुःखरहित अवस्था कहा है, किन्तु कुछ अन्य विचारकों के अनुसार इस अवस्था में विशुद्ध आनंद की प्राप्ति होती है।

हिन्दू विचारक विश्व में दुख, पीड़ा एवं अपार कष्ट देखकर तिलमिला जाते हैं। ये व्यक्ति को बंधनग्रस्त पाते हैं। बंधन दुख का मूल कारण है अज्ञान के कारण व्यक्ति बंधन ग्रस्त होता है। अज्ञान के नाश से ही व्यक्ति के दुःख दूर हो सकते हैं। और मोक्ष की प्राप्ति संभव होती है। इस प्रकार मोक्ष-प्राप्ति होने पर व्यक्ति जन्म मरण के चक्कर से मुक्त हो जाता है। और उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं रहता।

2.1.16 पुरुषार्थों की सार्थकता

हिन्दू चिन्तन मानव जीवन को सरिता मानता है और इस सरिता में अर्थ और काम रूपी जल प्रवाहित हो रहा है, इस अर्थ और काम के प्रवाह को धर्म और मोक्ष के दो किनारों से संतुलित किया है। अर्थात् काम और अर्थ का उपयोग धर्म के बिना निन्दनीय माना गया है। अर्थ और काम तभी तक पुरुषार्थ है जब तक धर्म की नींव पर इनकी इमारत खड़ी है।

धर्म का फल लौकिक सुख शान्ति और पारलौकिक लक्ष्य स्वर्ग माना गया है। स्वर्ग सुखों की भी समाप्ति होती है। उपनिषद् गीता और पुराण यह स्वीकारते हैं कि धार्मिक कर्तव्यों के फलस्वरूप जो पुण्य संचित होता है वह भी भोग के पश्चात् क्षय हो जाता है। मनुष्य को स्वर्ग छोड़कर पुनः मृत्युलोक में आना पड़ता है।

आदर्श के दृष्टिकोण से मोक्ष ही सर्वप्रमुख पुरुषार्थ है, अन्य पुरुषार्थ उसकी प्राप्ति के साधनमात्र हैं। मोक्ष (आत्मसाक्षात्कार/परम् आनन्द) को जीवन का चरम-लक्ष्य स्वीकार करते हैं। मोक्ष शुभ और अशुभ से परे निर्विकार स्थिति है। भारतीय विचारक मोक्ष को ही सर्वोच्च आदर्श मानते हैं।

2.02 निष्काम कर्म एवं लोकसंग्रह

भगवद्गीता जिसे गीता कहा जाता है, हिन्दुओं का पवित्र और लोकप्रिय धार्मिक-ग्रन्थ है। विश्व साहित्य में ऐसा ग्रन्थ मिलना दुर्लभ है। गीता में समस्त भारतीय दर्शन का सारतत्त्व निहित है।

वर्तमान युग में गीता का अत्यधिक महत्व है क्योंकि आज मानव के सामने अनेक समस्याएँ हैं जिनका निराकरण गीता के अध्ययन से प्राप्त हो सकता है।

श्री अरविन्द, गांधीजी तथा लोकमान्य तिलक का मानना है कि गीता में निष्काम-कर्म को ही सर्वाधिक महत्व दिया गया है। गीता में योग शब्द का उपयोग आत्मा का परमात्मा से मिलन के अर्थ में किया है। मानव मन के तीन अंगों के अनुरूप गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग का समन्वय हुआ है। गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति को मोक्ष का मार्ग कहा है।

कर्म का अर्थ आचरण है। उचित कर्म से ईश्वर को अपनाया जा सकता है। गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से प्रत्येक मनुष्य को फल की आसक्ति का त्याग करके दृढ़तापूर्वक कर्तव्य पालन करने की शिक्षा दी है।

निष्काम-कर्म में प्रवृत्ति और निवृत्ति के बीच कर्मवाद तथा संन्यास के बीच अथवा भोगवाद और वैराग्यवाद के बीच सामंजस्य स्थापित किया जाता है। कर्म तो हमें करना ही है, परन्तु श्री कृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि जो मनुष्य अपने कर्मों के फल को ईश्वर उपासना करते हुए उसी को समर्पित कर देते हैं, वे संसार के दुःखों से मुक्त हो जाते हैं। साधारणतः हम फल की आशा से कर्म करते हैं। सांसारिक — विषयों के प्रति हमारा राग द्वेष रहने से व्यक्ति जन्म मरण के चक्र में पड़ता है। कर्तव्य पर हमारा कोई अधिकार नहीं रहता, फल सदैव हमारी कामना के अनुकूल भी नहीं रहता अतः हमें कर्तव्य की भावना से कर्म करना चाहिए, कर्मफल की कामना से नहीं। निष्काम कर्म का अर्थ साधारणतः बिना कामना के कर्म करना लिया जाता है। क्योंकि कामनाओं से प्रेरित होकर कर्म करने से और फल की आशा रखकर कर्म करने से व्यक्ति बंधन में फसता है। किन्तु निष्काम कर्म करने से मोक्ष मिलता है क्योंकि निष्काम कर्मयोगी कर्तव्य, कर्तव्य के लिए करता है अथवा कर्तव्य ईश्वर के लिए करता है। स्पष्ट है कि यहाँ कर्म का उद्देश्य तो है किन्तु फल के प्रति आसक्ति नहीं है। 'गीता' के अनुसार आत्मा स्वभावतः कर्ता नहीं है। अज्ञानवश वह अपने को कर्म करने वाला समझ लेती है। सांसारिक बंधन से मुक्त होने का उपाय यह है कि व्यक्ति ईश्वर को विश्व का संचालक मानते हुए कर्म करता रहे। ऐसा निष्काम कर्मयोगी संसार में रहते हुए सांसारिकता से परे रहता है। जैसे कमल का पत्ता जल में रहकर भी जल से बाहर रहता है। अपने समस्त कर्मों और उनके परिणामों को ईश्वर में अर्पित कर आशारहित और ममतारहित होकर अनासक्ति भाव से कर्म करना ही निष्काम कर्म है। अनासक्तिभाव से कर्म का आचरण करने से व्यक्ति परमात्मा को प्राप्त होता है। "कर्म में आसक्ति हुआ अज्ञानी जैसे कर्म करता है, वैसे ही अनासक्ति हुआ ज्ञानी भी लोक संग्रह को चाहता हुआ कर्म करे" आत्म लाभ या ईश्वर लाभ की दृष्टि से ही हुआ कर्म कर्म है। इसी में लोकसंग्रह की भी भावना आ जाती है क्योंकि वह ईश्वर का ही कार्य है। अन्य इच्छा से किया गया कर्म सच्चा कार्य नहीं है।

गीता के अनुसार व्यक्ति को अपनी स्वार्थ प्रधान इच्छाओं का दमन करना चाहिये। समस्त अहम् प्रधान इच्छाओं को ईश्वर की ओर उन्मुख कर मानवता की सेवा में लगा देना चाहिये। गीता समस्त प्राणियों के प्रति सद्विच्छा, दुखियों के प्रति सहानुभूति सबके लिए सद्व्यवहार व दया, अपराधियों के लिए क्षमा, सौम्यता, नम्रता, सन्तोष, निर्भयता के भाव को धारण करने एवं आत्म त्याग के प्रयोग का निषेध नहीं करती। पत्नी, पुत्र एवं परिवार के संकुचित प्रेम से ऊपर उठना चाहिये। सर्वभूत हित तथा लोकसंग्रह हमारे कर्म के प्रयोजन होने चाहिये। (1) स्वार्थ को नष्ट कर देना चाहिये, स्वार्थरहित मानवता का विकास करना चाहिये। गीता अहंप्रधान इच्छाओं के देवीकरण द्वारा परार्थमूलक इच्छाओं में परिवर्तित करने के पक्ष में है। श्री कृष्ण ने इन्द्रियों तथा मन पर पूर्ण नियन्त्रण रखने वाले स्थितप्रज्ञ मनुष्य को निष्काम कर्मयोग के योग्य माना है क्योंकि ऐसे स्थितप्रज्ञ मनुष्य की संयमित और स्थिर बुद्धि को निष्काम कर्मयोग पालन के लिए आवश्यक माना है। (वासनाओं इच्छाओं, लाभ-हानि, सुख-दुःख, जय-पराजय में समत्व भाव रखती है) निष्काम कर्मयोगी को स्वधर्म का पालन करना चाहिए। स्वधर्म से तात्पर्य प्रत्येक मनुष्य के अन्दर के स्वाभाविक गुण और क्षमताओं से है। श्री कृष्ण कहते हैं कि चारों वर्णों की सृष्टि मैंने गुण और कर्म के

आधार पर की है अतः वर्णधर्म का पालन करना चाहिए। यदि किसी मनुष्य के अन्दर मानसिक कार्य करने की क्षमता है तो उसे शारीरिक कार्य की क्षमता न होने पर शारीरिक कार्य नहीं करने चाहिए क्योंकि उसे उसमें सफलता नहीं मिलेगी। जिसके अन्दर जो क्षमता और गुण है वह उसी कार्य को करे। इसी से कहा गया है कि “स्वधर्म निधन श्रेय परधर्म भयावह”।

2.03 गाँधी दर्शन

महात्मा गाँधी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 को पोरबन्दर में हुआ था। रूढ़िवादी परिवार होते हुए भी मोहनदास कमरचन्द गाँधी को आधुनिक शिक्षा उपलब्ध हुई। उनका पालन-पोषण जैसे वातावरण में हुआ उसके परिणामस्वरूप वे धार्मिक, नैतिक परम्पराओं को जानने के साथ आधुनिकता के प्रति भी जागरूक हो पाए। अफ्रीका-वास के दौरान अनैतिक एवं रंगभेद पर आघृत नियमों के विरुद्ध ‘शांतिपूर्ण प्रतिवाद’ किया।

गाँधीजी के विचार पर हिन्दू परम्परा की गहरी छाप थी। टालस्टाय ने ईसाई शिक्षा को जिस प्रकार प्रतिष्ठित किया उसका प्रभाव भी महात्मा गाँधी के विचारों पर पड़ा और ईसा की कुछ शिक्षाओं को उन्होंने महत्वपूर्ण स्थान दिया। गाँधीजी ने ‘इस्लाम’ और जोरास्ट्रीयन धर्मों का भी अध्ययन किया। इन सब प्रभावों के साथ अपनी मौलिकता और नवीनता के आधार पर नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, सामान्य समस्याओं सभी क्षेत्रों में गाँधीजी ने ‘अपने प्रयोग’ प्रारम्भ किये। गाँधीजी ने स्वेदशी स्वराज और सर्वोदय को ईश्वर प्राप्ति के सोपान माने हैं। स्वेदशी हमारे अन्दर वह प्रेरणा है, जो कि हमें अधिक दूर को छोड़कर हमारे निकट चारों ओर की सेवाओं का प्रयोग करने को सीमित करती है। स्वेदशी के व्यवहार से व्यक्ति और समाज में आत्मनिर्भरता और स्वदेश प्रेम जाग्रत होता है। राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए गाँधीजी ‘स्वराज’ शब्द का प्रयोग करते हैं। स्वराज का अर्थ है ‘अपना राज्य’ ‘अपना शासन’। वास्तविक स्वराज वहीं है जिसमें धनी तथा निर्धन दोनों की आवश्यकताओं सहज रूप में पूरी होती रहे।

‘स्वराज’ का अर्थ है हर व्यक्ति के मन में स्वतन्त्रता का भाव सजग रहे। सच्ची स्वतन्त्रता भेदभाव से ऊपर उठ जाती है। जीवन का लक्ष्य आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति है जिसमें मानव भेदभाव से ऊपर उठ प्रेम तथा आनन्द का जीवन पाता है।

2.3.1 सर्वोदय

सर्वोदय का आदर्श राम-राज्य (आदर्श राज्य) का आदर्श है। सर्वोदय का अर्थ सभी का समुचित विकास है। उसका लक्ष्य एक ऐसे समाज की स्थापना करना है, जिसमें सभी व्यक्तियों, भाषाओं, धर्मों और साहित्यों इत्यादि को अभ्युदय का अवसर मिले।

आदर्श राज्य वही है जहाँ सभी व्यक्तियों को समान अवसर तथा सुविधा मिलती रहे तथा जहाँ शुभत्व, शान्ति तथा आनन्द का वास हो। सर्वोदय का विचार व्यापक और परमार्थ मूलक है। सर्वोदय का आधार प्रेम है, इसमें यह विचार निहित है कि व्यक्ति परहित के लिए आत्म बलिदान भी कर सकता है। हर कर्म, योजना (सामाजिक तथा राजनीतिक) तथा क्रिया का एकमात्र लक्ष्य सबों का शुभत्व है। सर्वोदय विचार सबके मूल में एकरूपता को स्वीकारता है जो नैतिक आचरण का आधार बनती है।

गाँधीजी का कहना है चाहे इस प्रकार की एकरूपता, (आदर्श) की अनुभूति न हो मगर इस आदर्श का महत्व इसी में है कि यह प्रेरणा स्रोत अवश्य बनता है।

ग्रामीण गणतन्त्र में ग्राम की धरती किसी व्यक्ति की नहीं ग्राम की समझी जाएगी। यही बात “वसुधैव कुटुम्बकम्” के आदर्श में निहित है।

गाँधीजी का मानना है कि यद्यपि पूर्णतया अहिंसात्मक समाज की स्थापना सरल नहीं है तथापि सर्वोदयी व्यवस्था में पुलिस, न्यायालय आदि का स्वरूप भिन्न होगा, जहाँ इन व्यवस्थाओं के अधिकारियों का उद्देश्य जन की सेवा तथा दोषी अपराधी का सुधार होगा। अपराधी को दण्ड देने से ही अपराध नहीं मिटता, प्रेम पूर्ण व्यवहार तथा उनके हृदय में सोये हुए शुभत्व को जगाकर अपराध कम किए जा सकते हैं।

2.3.2 एकादश व्रत

महात्मा गाँधी ने अपने सम्पूर्ण नैतिक-दर्शन का निर्माण योग दर्शन द्वारा बनाए गए पांच यमों –

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य के आधार पर किया है। इनके अतिरिक्त अभय तथा अस्वाद को भी गाँधीजी ने आवश्यक व्रतों के रूप में स्वीकार किया है। गाँधीजी ने उस समय की भारतीय राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक – परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए – शारीरिक श्रम, स्वदेशी, सर्वधर्मसमभाव, तथा अस्पृश्यता निवारण जैसे सिद्धान्तों को प्रतिपादन किया। कुल मिलकर ये एकादश व्रत गाँधीजी के नैतिक दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त हैं।

(1) अहिंसा – गाँधीजी ने अहिंसा की बहुत ही व्यापक और संतुलित व्याख्या की है। उन्होंने अहिंसा के दो अर्थ बताए हैं – निषेधात्मक और स्वीकारात्मक। निषेधात्मक अर्थ के अनुसार क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, विद्वेष तथा स्वार्थ से प्रेरित होकर किसी भी प्राणी को मन वचन कर्म द्वारा कष्ट न पहुंचाना अहिंसा है। स्वीकारात्मक अर्थ में सभी प्राणियों के प्रति प्रेम, दया, सहानुभूति और सद्भावना रखना है। अहिंसा का आधार मनुष्य का नैतिक या आध्यात्मिक बल है उसकी विवशता या दुर्बलता नहीं। अहिंसक व्यक्ति अत्याचारी के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना नहीं रखता अपितु अपनी इच्छा से कष्ट सहकर भी अन्याय और अत्याचार का विरोध करता है। यह उसके नैतिक और आध्यात्मिक बल का द्योतक है।

अहिंसा केवल मानव जीवन का नहीं अपितु समस्त विश्व का नियम है। यही विश्व का अन्तिम सत्य है। अर्थात् सत्य और अहिंसा एक ही है। अहिंसा के भलीभाँति पालन के लिए ईश्वर में अटूट आस्था होना आवश्यक है।

अतः हिंसा अथवा अहिंसा का निर्णय मनुष्य के कर्म और उसके परिणाम के आधार पर नहीं, अपितु कर्म के मूल में निहित उद्देश्य के आधार पर किया जा सकता है।

गाँधीजी ने स्वयं आजीवन कष्ट सहकर अहिंसात्मक उपायों द्वारा सभी प्रकार के अत्याचारों का दृढ़तापूर्वक विरोध किया और अन्य सभी लोगों को भी ऐसा ही करने की शिक्षा दी।

(2) सत्य – जो तथ्य जिस रूप में देखा, सुना, जाना या अनुभव किया गया है उसे कोई परिवर्तन या संशोधन के बिना उसी रूप में व्यक्त करना सत्य है। सत्य-पालन हेतु मनुष्य को कम बोलना चाहिए, अतिशयोक्ति, पक्षपात, तथ्यों को छिपाने या परिवर्तित करने का कभी प्रयत्न नहीं करना चाहिए क्योंकि यह सत्य का उल्लंघन है।

गाँधीजी सत्य को भी बहुत व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हैं और मानते हैं कि विचार-कर्म और वाणी द्वारा सत्य-आचरण अनिवार्य है। उनका मानना है कि अपने दैनिक व्यवहार में दृढ़तापूर्वक सत्य के अनुसार आचरण करना चाहिए, इसी से सत्य की वास्तविक साधना संभव है। यदि मनुष्य अपने व्यवहारिक जीवन में सत्य का दृढ़तापूर्वक पालन करे तो उसे इस समस्या का समाधान स्वतः प्राप्त हो जाएगा कि किसी कठिन अवसर पर वास्तव में उसका क्या कर्तव्य है? उनका सम्पूर्ण जीवन इसका साक्षी है।

(3) अस्तेय – गाँधीजी ने इसे भी बहुत व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है। शारीरिक, मानसिक, वैचारिक आदि सभी प्रकार की चोरी से सदा दूर रहना ही अस्तेय है। जानबूझकर किसी को कोई वस्तु या धन सम्पत्ति चुराना शारीरिक चोरी है। किसी वस्तु को चोरी से प्राप्त करने की इच्छा करना और उसके लिए ललचाते रहना मानसिक चोरी है। किसी अन्य व्यक्ति के विचारों को स्वयं अपने मौलिक विचार कहकर दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करना वैचारिक या बौद्धिक चोरी है।

अस्तेय का पालन किए बिना अहिंसा और सत्य के अनुसार आचरण करना बहुत कठिन है।

(4) अपरिग्रह – अपरिग्रह के अनुसार आचरण करने का अर्थ है कि निरन्तर श्रम करते हुए भी समाज से उतना ही ग्रहण करे जितना उसके जीवन के लिए अनिवार्य हो, शेष सब कुछ उसे समाज के कल्याण के लिए समर्पित कर देना चाहिए। अपनी अनिवार्य आवश्यकता से अधिक किसी भी वस्तु को ग्रहण करके उसे भविष्य के लिए संचित करना अपरिग्रह का उल्लंघन है। अपरिग्रह के पालन हेतु मनुष्य को अपनी आवश्यकताएं सीमित करनी चाहिए, अपरिग्रह अनुसार आचरण करने से ही समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता का अंत होगा मनुष्य का जीवन अधिक शांतिपूर्ण एवं सुखमय होगा।

(5) ब्रह्मचर्य – “मन वचन कर्म से सभी समयों में तथा सभी स्थानों पर अपनी समस्त इन्द्रियों का पूर्ण संयम अथवा नियन्त्रण ही ब्रह्मचर्य है।” ब्रह्मचर्य के पूर्णरूपेण पालन हेतु व्यक्ति को अपनी सभी इन्द्रियों

को संयमित और नियन्त्रित करना होगा। ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए मनुष्य को तामसिक भोजन इत्यादि से यथासंभव दूर रहने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके अतिरिक्त वासनात्मक विचारों का परित्याग करके अपने मन में केवल पवित्र विचारों का विकास करना आवश्यक है। ईश्वरोपासना, स्वाध्याय तथा सामाजिक हित के कार्य में निरन्तर व्यस्त रहने से ब्रह्मचर्य का निष्ठापूर्वक पालन करना सुगम होगा।

(6) अभय — अहिंसा पालन की अनिवार्यता निर्भयता है। अभय के अन्तर्गत भूख, प्यास, शारीरिक आघात, आक्रोशात्मक व्यवहार, दुर्वचन और मृत्यु के भय से भी ऊपर उठना आता है। वह मानवीय जीवन का सद्गुण है जिसे विकसित करना हमारा नैतिक कर्तव्य है।

(7) अस्वाद — सामान्यतः मनुष्य के भोजन के ढंग 'स्वाद' पर आघृत होते हैं। स्वादिष्ट भोजन का लोभ गरिष्ठ और तामसी भोजन के लिए प्रेरित करता है। ऐसे भोजन से लोलुपता और इन्द्रियों की उत्तेजना प्रबल होती है इसलिए गाँधीजी संतुलित आहार की अनुशंसा करते हैं जो स्वास्थ्यवर्धक हो, इन्द्रियों को उत्तेजित न करे। अतः इन्द्रिय अनुशासन हेतु भोजन के ढंग को नियन्त्रित करना अनिवार्य है।

(8) सर्वधर्म समभाव — गाँधीजी कहते हैं कि सभी धर्म यथार्थ हैं, सत्य हैं। सभी धर्म उन्हें उतने ही प्रिय हैं जितना हिन्दू धर्म। हर धर्म अपने धर्मावलम्बी को एक श्रेष्ठतर मानव बनाने की क्षमता रखता है। गाँधीजी प्रार्थना करते हैं कि ईश्वर हर व्यक्ति को आत्मोत्थान के लिए शक्ति और प्रकाश दे ताकि एक हिन्दु श्रेष्ठतर हिन्दू बन सके, मुसलमान श्रेष्ठतर मुसलमान तथा क्रिश्चियन श्रेष्ठतर क्रिश्चियन बन सके। धर्मों का वास्तविक लक्ष्य मनुष्य को श्रेष्ठ मानव बनाना है।

(9) स्वदेशी — स्वदेशी का शाब्दिक अर्थ है — 'अपने देश का' स्वदेशी विचार का प्रयोग गाँधीजी जीवन के हर पक्ष में (सामाजिक — राजनैतिक — आर्थिक) करते हैं। स्वदेशी सिद्धान्त स्वदेशी — उद्योग तथा ग्रह-उद्योग की सुरक्षा की बात करता है, किन्तु 'स्वदेशी' का विचार विदेशी के विरोध पर आघृत नहीं है अपितु वह तो दोनों के सहअस्तित्व को स्वीकारता है। परन्तु जब विदेशी-वस्तुओं का उपयोग स्वदेश के अस्तित्व के लिए संकट बन जाता है, तब उसके बहिष्कार की बात करता है। क्योंकि हर देश का प्रथम कर्तव्य सबों के लिए रोजगार, काम तथा भोजन आदि की व्यवस्था करना है।

(10) शारीरिक श्रम — गाँधीजी का तात्पर्य है कि जीवित रहने के लिए हर व्यक्ति को श्रम करना आवश्यक है हर व्यक्ति श्रम की गरीमा को समझते हुए कम से कम अपनी रोटी के लिए तो कुछ शारीरिक कर्म आवश्यक है। हर व्यक्ति हर प्रकार का शारीरिक कर्म नहीं कर सकता अतः व्यक्ति स्वयं निर्धारित करे कि वह किस प्रकार का शारीरिक श्रम कर सकता है। व्यक्ति अपनी शक्ति और रुचि के अनुरूप किसी भी कार्य का चयन कर सकता है। हर व्यक्ति को स्वेच्छा से श्रम करना चाहिए बाध्यता से नहीं, क्योंकि सामाजिक जीवन का आधार प्रेम तथा स्वेच्छापूर्ण सहयोग है।

(11) अस्पृश्यता निवारण — छूआछूत समाज का कलंक है। उसको दूर करना प्रत्येक का धर्म है। सभी प्रकार के शारीरिक श्रम समान हैं। शारीरिक श्रम परमावश्यक है। गाँधीजी ने सभी प्रकार की सफाई जैसे मल-मूत्र, कूड़ा-ककट, सार्वजनिक — शौचालय, नालियाँ, गलियाँ, सड़कें आदि का कार्य सबको करने का परामर्श दिया।

बहुविकल्पी प्रश्न

- (1) "नीतिशास्त्र मानव चरित्र मूल्यांकन की विधि है।" कहा है—
 (अ) उपनिषद (ब) शुक्राचार्य (स) मनु (द) चाणक्य
- (2) बौद्धिक और चारित्रिक-विकास कराने वाला आश्रम है—
 (अ) गृहस्थ (ब) वानप्रस्थ (स) ब्रह्मचर्य (द) संन्यास
- (3) कर्मफल में आसक्ति का त्याग कराने वाला सिद्धांत या मार्ग है—
 (अ) वानप्रस्थ (ब) संन्यास (स) निष्काम कर्म (द) ब्रह्मचर्य
- (4) देवताओं का मनुष्य को सम्पन्नता और सुरक्षा प्रदान करना, कहलाता है?
 (अ) पितृ ऋण (ब) ऋषि ऋण (स) देव ऋण (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

- (5) 'धारण करने योग्य' कर्म है—
 (अ) निष्काम कर्म (ब) धर्म (स) मोक्ष (द) सत्य
- (6) "स्वधर्म निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" कहा गया है—
 (अ) राधाकृष्णन (ब) मनु (स) गाँधीजी (द) गीता
- (7) निष्काम कर्म को सर्वाधिक महत्व दिया है?
 (अ) श्री अरविन्द (ब) गाँधीजी (स) लोकमान्य तिलक (द) उपर्युक्त तीनों
- (8) इन्द्रियों और मन पर पूर्ण—नियन्त्रण रखने वाला कहलाता है—
 (अ) सत्यनिष्ठ (ब) अहिसंक (स) स्थित प्रज्ञ (द) ब्रह्मचारी
- (9) गाँधीजी के विचारों पर प्रभाव पड़ा?
 (अ) इस्लाम (ब) ईसाई शिक्षा (स) हिन्दू परम्परा (द) तीनों
- (10) एकादश व्रत में सम्मिलित नहीं है—
 (अ) अस्तेय (ब) अस्वाद (स) अभय (द) आत्म बलिदान
- (11) 'अस्वाद' विचार का सीधा सम्बन्ध है—
 (अ) सत्य (ब) अहिंसा (स) ब्रह्मचर्य (द) अपरिग्रह
- (12) मनु द्वारा बताए धर्म के लक्षणों में सम्मिलित नहीं है—
 (अ) क्षमा (ब) अस्तेय (स) अहिंसा (द) सत्य
- (13) मोक्ष है—
 (अ) वास्तविक ज्ञान (ब) बंधन का नाश (स) विशुद्ध आनन्द (द) तीनों
- (14) श्री कृष्ण ने चारों वर्णों की सृष्टि का आधार बनाया है—
 (अ) गुण (ब) कर्म
 (स) कर्म और गुण दोनों (द) कोई नहीं
- (15) अतिशयोक्ति, पक्षपात, तथ्यों को छिपाना या परिवर्तित करना अधिक बोलना आदि किस व्रत का उल्लंघन है—
 (अ) अहिंसा (ब) स्वधर्म (स) अभय (द) सत्य

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

- (1) चार आश्रम कौनसे हैं?
- (2) ऋण कितने प्रकार के हैं?
- (3) चरम — पुरुषार्थ (साध्य) कौनसा है?
- (4) गीता का मुख्य आदर्श कौनसा सिद्धान्त है?
- (5) गाँधीजी के अनुसार व्रतों की संख्या कितनी है?
- (6) गाँधीजी के अनुसार ईश्वर प्राप्ति के सोपान कौनसे हैं?
- (7) सभी आश्रमों का आश्रय — प्रदाता कौनसा आश्रम है?
- (8) देवऋण से उऋण होने का उपाय क्या है?
- (9) भर्तृहारी के अनुसार कौनसा पुरुषार्थ सभी गुणों की खान है?
- (10) अनासक्त ज्ञानी को कैसे कर्म करने चाहिए?
- (11) स्वदेशी का शाब्दिक अर्थ है?
- (12) गाँधीजी के अनुसार सामाजिक जीवन का आधार क्या है?
- (13) वैदिक युग में किन दो मार्गों की बात की जाती है।
- (14) नीतिशास्त्र को 'कर्तव्य और अकर्तव्य का बोध कराने वाला शास्त्र' किसमें कहा है?
- (15) भौतिक ऐश्वर्य और सांसारिक सुख—समृद्धि को महत्व देने वाला मार्ग कौनसा है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

- (1) एकादश व्रतों के नाम बताइये?
- (2) "स्वदेशी" क्या है?
- (3) Religion और धर्म किस प्रकार भिन्न है?
- (4) ऋषि ऋण को समझाइये?
- (5) राधाकृष्णन ने धर्म को कैसे परिभाषित किया है?
- (6) गीता के अनुसार 'योग' के प्रकार कितने हैं?
- (7) गीता के अनुसार 'स्वधर्म' क्या है?
- (8) अहिंसा क्या है?
- (9) सत्य क्या है?
- (10) अस्तेय को समझाइये?
- (11) अपरिग्रह को समझाइये?
- (12) ब्रह्मचर्य को स्पष्ट करो?
- (13) 'अभय' से आप क्या समझते हो?
- (14) 'अस्वाद' क्या है?
- (15) सर्वधर्म समभाव क्या हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न

- (1) आश्रम व्यवस्था को विस्तार से समझाइये? वर्तमान समय में इसके औचित्य पर प्रकाश डालिए?
 - (2) पुरुषार्थ चतुष्टय कौन से हैं? स्पष्ट कीजिये? पुरुषार्थों की सार्थकता पर अपने विचार व्यक्त कीजिये?
 - (3) निष्काम कर्म सिद्धान्त क्या है? निष्काम कर्मयोगी के कर्म का प्रयोजन क्या होना चाहिए?
 - (4) एकादश व्रत कौनसे हैं? सविस्तार स्पष्ट करो?
 - (5) महात्मा गाँधी के सर्वोदय विचार को स्पष्ट करो?
-